

भारतीय संदर्भ में प्रस्तावना

मनीष जैन

बहुत से लोग प्रश्न कर सकते हैं कि क्या यह पुस्तक भारत के लिये, सचमुच प्रासंगिक है – जहाँ इतने सारे बच्चे स्कूल नहीं जाते, या वे इसे मात्र अमरीकी शिक्षा प्रणाली की पुस्तक कह कर रद्द करने की कोशिश कर सकते हैं। मैं इसके विरुद्ध सचेत करना चाहूँगा। जब मैं इस पुस्तक को पढ़ रहा था, तो मैंने अपने आपको लगभग हर पृष्ठ पर कुछ न कुछ प्रासंगिक रेखांकित करते पाया।

मैं समझता हूँ कि *डॉबिंग अस डाउन* को पढ़ना उन सब के लिये आवश्यक है जो *नई तालीम* और *स्वराज* के गांधीवादी दर्शन की गहराई में उतरने में रुचि रखते हैं, और उनके लिये भी जो शिक्षा के अधिकार का कानून (आरटीई, जो कि हाल ही में बनाया गया है) की गहन दार्शनिक समस्याओं को समझने की इच्छा रखते हैं और साथ ही भारत में व्यापक शिक्षा के विस्तार में। मैंने इस किताब को अपने लिये भी अत्यंत लाभप्रद पाया बतौर अभिभावक मुझ खुद को व अपनी पुत्री को स्कूल से विमुख करने की यात्रा में।

अनेक वर्ष पूर्व मेरे मन में यह विचार आया था कि मैं एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन करूँ जिसमें अध्यापक स्कूल में बच्चों के साथ किये गए अपराधों को स्वयं स्वीकार करें। मैंने अपने कई मित्रों से पूछा जो शिक्षा पद्धति में काम कर चुके थे कि वे अपनी कहानियाँ

बतलाएं और उन अपराधों के लिये क्षमा मांगे जो उन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बच्चों के विरुद्ध किये थे। कुछ-कुछ “मुझे क्षमा करो पिता, मैंने अपराध किया है” की तर्ज पर। अनेक भारतीय शिक्षक मित्रों को विचार पसंद आया, पर वे अपने अनुभवों को बांटने के लिये तैयार नहीं हुए। ऐसा करना उन्हें विश्वासघात लगा होगा, या फिर वे डर गए होंगे। जो भी हो “डबिंग अस डाउन” उस धारणा का बेहतरीन उदाहरण है जो कभी मैंने सोचा था।

जैसा कि उनके आध्यात्मिक पूर्ववर्ती जॉन होल्ट ने किया था, जॉन टेलर गेट्टो शिक्षक के द्रष्टिकोण से लिखते हैं – एक शिक्षक जिसके पास 25 वर्षों का व्यावहारिक खून, पसीने और आँसुओं का अनुभव है। वे ऊँची उड़ान भरने वाले नीति निर्माता या आराम कुर्सीधारी बुद्धिवादी नहीं हैं, अपितु कोई जिसने खंदकों को खोदने का कठिन श्रम किया है और जो जीवन के असली खेल के प्रति सतर्क करना चाहता है। वे गहन निष्ठा और स्पष्टता से लिखते हैं न कि “ऐसा होना चाहिये” या “हो सकता था”, जैसा अधिकांश तथाकथित शिक्षा सुधारक कहते हैं। मैं केवल प्रार्थना कर सकता हूँ कि हमारे भारतीय शिक्षक किसी दिन उन अपराधों के प्रति ईमानदार हो जाएंगे जो उनकी कक्षाओं व स्कूलों में होते हैं।

गेट्टो, उस औद्योगिक एक-साइज़-सबके-लिये-फिट है, स्कूली मॉडल पर भी जबर्दस्त प्रहार करते हैं। वे तर्क देते हैं कि न केवल स्कूल हमारे बच्चों के जीवन के लिये अप्रासंगिक हैं (कुछ, जिसमें अधिकांश समझदार लोग सहमत होंगे) अपितु वस्तुतः वे क्षतिकारक हैं। *उनका केंद्रीय सिद्धांत है कि कारखाना शिक्षा प्रणाली (फेक्टरी स्कूलिंग) बच्चों तथा समुदायों को भीषण नुकसान पहुँचा रही है।* यह सीखने में बाधक, समाज विरोधी और अलोकतांत्रिक क्रिया है। अपने कार्य के जरिये गेट्टो हमसे पूछते हैं कि पवित्र गाय से प्रश्न करो: जिसे यह कह कर प्रचारित किया जा रहा है कि वह समस्त सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं पारिस्थितिक बीमारियों के लिये रामबाण है, वही वास्तव में उन बीमारियों के मुख्य कारणों में से एक हो सकती है?

यहाँ यह जान लेना ज़रूरी है कि आज कारखाना स्कूल की परिभाषा केवल सरकारी स्कूलों तक ही सीमित नहीं रह गई है। इसका ढाँचा तथा मूल्य – जिसके मूल में समाज

का नियंत्रण है – गैर-औपचारिक सामाजिक कार्यक्रमों में, खिलौनों और खेलकूद में, जिस तरह हम अपनी गोष्ठियाँ और सम्मेलन आयोजित करते हैं, टी.वी और मास-मीडिया में, धार्मिक प्रशिक्षण में, यहाँ तक कि हमारे पारिवारिक जीवन में फैल गए हैं।

गेट्टो की आलोचना के केंद्र में संस्थानीकरण का प्रश्न है। संस्थानीकरण से मेरा आशय मानव चेतना और मानव अच्छाई को बड़े-पैमाने की संस्थाओं के तर्क से दबाना है। राष्ट्रवाद, अभियांत्रिकी, सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जीएनपी), कार्पोरेट ब्रांड आदि अनेकों बनावटी ईश्वरों को हमारे ऊपर बड़ी चालाकी से मढ़ दिया गया है। विविध समुदायों का सामाजिक तौर पर यांत्रिकीकरण और पुनरुत्पांतरण किया गया है (या तो भारी तबाही मचाने वाले शस्त्रों के जरिये या विशाल मात्रा में प्रशिक्षण के जरिये विध्वंस मचाकर) ताकि वे इन संस्थात्मक श्रेणियों तथा मानदंडों के अनुकूल (फिट) हो जाएं।

इतिहास ने हमें दिखाया है कि मानवता के विरुद्ध जघन्यतम अपराध वहाँ हुए हैं जहाँ लोग संस्थाओं द्वारा रचित अमूर्तताओं के प्रति आज्ञाकारी व बिखरे हुए गुलाम बन गए हों। हमारे दैनंदिन जीवन में अमानवीकरण के अनेकों उदाहरण दिखाई देते हैं: *सेना का जवान* जब यह कहता है कि वह तो केवल आदेश का पालन कर रहा था, जब उसने निरपराध मणिपुरी पर गोली चलाई ... *भारतीय ग्रहणी* जो प्रतिदिन सब्जी वाले से प्लास्टिक की थैली लेती है और कहती है कि पड़ोस को स्वच्छ रखना और धरती माता की साज संभाल करना उसका काम नहीं है ... *कक्षा का मानीटर* जो अपने हमउम्रों को प्रतिदिन शिक्षक द्वारा अपमानित होते व पिटते देखता है, क्योंकि उन्होंने होमवर्क पूरा नहीं किया था ... *वह लड़की* जो कीमती ब्रांडेड वस्त्र इसलिये खरीदती है ताकि अधिक सुंदर दिखे और लोकप्रिय हो जाए। इस सब के सार में संस्थानीकरण है जो हमारे अंदर की पूरी आवाज को और हमारे निजी व सामूहिक “सत्य के साथ प्रयोग” को दबा देता है।

आज के माई-बाप रिलायंस, स्टार टी.वी और विश्व बैंक का अंतर्सम्बन्ध जानता है कि हमारे लिये श्रेष्ठ क्या है। गोली वे ही दागते हैं पर हमें स्वतंत्रता और विकल्प की मरीचिका देते हैं – चाहे वह टी.वी चैनल हो, मोबाइल फोन कंपनियों हों, आलू चिप्स हों या गौरैपन की क्रीम ही क्यों न हो। हमने रेडीमेड बाज़ार के प्रभुओं से भुतहा सौदा कर लिया है, जिसमें ‘सुविधा’ के बदले में हमारे जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रसंस्कारित

व डिब्बे में बंद करके दिया जाता है। लेकिन वे हमसे हमारे उस विकल्प को छीन लेते हैं जो हमारे जीवन के लिये सबसे अधिक महत्वपूर्ण है – ताज़ी हवा, विष-विहीन भोजन, प्रकृति के उपहारों तक पहुँच, रिश्तों की देखभाल करने हेतु समय, अपने आध्यात्मिक विकास पर अपना नियंत्रण और आंतरिक शांति। वे हमें पेशेवर सेनाओं, नाभिकीय बिजली घरों, कचरा भट्टियों, वित्तीय ऋणग्रस्तता, जीन संबंधी चालाकी आदि के पेशेवराना जगत को 'ना' कहने की स्वतंत्रता तक नहीं देते। हमसे कहा जाता है कि हम इन "आवश्यक बुराइयों" को अपनाए यदि हम भारत को एक दिन महाशक्ति बनाने का सपना देखते हैं।

गेट्टो की आलोचना हमें आमंत्रित करती है कि हम उन अधिक बुनियादी सवालों से खुद को जोड़ें कि अच्छा जीवन कैसे बनता है: ईमानदार जीविकोपार्जन क्या है? स्वस्थ लोकतंत्र, अर्थव्यवस्था और समाज को कौन सी चीज़ बनाती है। हम समस्त जीव जगत के साथ समन्वय पूर्वक किस तरह रह सकते हैं? गांधी ने इन प्रश्नों को *हिंद स्वराज* में 100 वर्ष से भी पहले उठाया था और उन्हें भारत की आध्यात्मिक धाराओं में बारंबार रेखांकित भी किया गया है। फिर भी चूहा-दौड़ शिक्षा पद्धति के पास इन सवालों के लिये समय नहीं है।

दुर्भाग्य से, भारत में, हमने 60 वर्ष स्वयं पर लेबल लगाते हुए व्यतीत किये हैं। भारत 'पिछड़ा' है, 'विकासशील' और 'गरीब' है। भारत 'निरक्षर' और 'अशिक्षित' है। और हाल ही में एक नया लेबल "सीखने वालों की प्रथम पीढ़ी" का आया है। यह सर्वाधिक अपमानजनक शब्द है जो मैंने सुना है क्योंकि इसका निहितार्थ यह हुआ कि हमारे पूर्वजों ने कुछ भी नहीं सीखा था, क्योंकि उनके गाँव में कोई स्कूल नहीं था। ये सब आयातित लेबल हैं, जैसे अंग्रेजी ब्रांड्स, जिसके पीछे शिक्षित मध्यवर्ग पागल है। वे हमें सभ्यता के मानसिक ढाँचे में डालकर गुलाम बनाते हैं जो हमें सही ढंग से सोचने से रोकता है, अपनी खुद की खूबियों का सही मूल्यांकन नहीं करने देता और अपनी शिक्षा, विकास तथा वृद्धि को पुनर्परिभाषित करने से रोकता है – *होमो इकोनामिक्स* से आगे नहीं जाने देता।

मैं तो कहना चाहूँगा कि भारत भाग्यशाली है। हम संस्थानीकृत शिक्षा और कारखाना स्कूल प्रणाली में गरीब हैं (संयुक्त राष्ट्र चार्ट के अनुसार) और *शिक्षा में*

धनवान हैं। जिस संसार की ओर गेट्टो इंगित कर रहे हैं – संयुक्त परिवार का, स्वस्थ समुदायों का, अर्थपूर्ण प्रशिक्षण व प्रमाणिक परियोजनाओं का, स्थानीय भाषाओं तथा सामुदायिक मीडिया का, प्रकृति में और निःशब्दता में समय का – यही सब असली शिक्षा है। हमारे भारत में अभी भी यह बड़ी मात्रा में उपलब्ध है। वस्तुतः शिक्षा ही भारत को डूबने से बचाए हुए है।

गेट्टो अमरीकियों की सहायता करने की कोशिश में हैं कि वे अपनी कल्पनाओं का उपनिवेशीकरण न करें और इस बात की खोज करें कि सुख के लिये वास्तव में क्या महत्वपूर्ण है। विशाल भारतीय मध्यवर्ग का उपनिवेशीकरण करने के लिये हमें उनसे कुछ संकेत मिल सकते हैं। *डॉबिंग अस डाउन* हमें चार महत्वपूर्ण बातों की याद दिलाती है जो किसी भी गंभीर विश्लेषण का हिस्सा होनी चाहिये और भारत में शिक्षा पर वाद-विवाद के लिये:

1. शिक्षा को अर्थशास्त्र और राजनीति के बड़े खेल के संदर्भ में देखा जाना चाहिये – राज्य और वैश्विक बाज़ार गहराई से आपस में संबद्ध हैं। कहानी लार्ड मेकाले से कहीं अधिक बड़ी है। इंडिया इन्कापॉरिटेड, वैश्विक अर्थव्यवस्था के बड़ों के साथ खेलना चाहता है और उसने 9% + वृद्धि दर को किसी भी कीमत पर लाने का वचन दिया है। इसके लिये तीन बातों की आवश्यकता है : बेलगाम खनन, लोक संसाधनों का बेलगाम निजीकरण और बेलगाम उपभोक्तावाद। इस खेल में, स्कूल पद्धति को दो भूमिकाओं का निर्वहन करना होगा:

(i) किसी भी प्रतिरोध को दबाने के लिये आज्ञाकारी खंडित नागरिकों का उत्पादन करना जिनका स्थान के विवेक से कोई रिश्ता न हो, और

(ii) प्रचंड उपभोक्ताओं के रूप में बच्चों को तैयार करना। शिक्षा को चाहिये कि वह हमें वह भ्रांति बेचे कि अधिक से अधिक वस्तुओं का होना ही हमें वास्तविक सुख दे सकता है। गेट्टो सरल सूत्र की पोल खोलते हैं जो हमें सुख देगा और जो हमें पढ़ाया जाता है: अच्छी शिक्षा = अच्छी नौकरियाँ = अच्छी चीज़ें = अच्छा सुख।

एक भड़काऊ फिल्म है, *कन्ज्यूमिंग किड्स*, जो बड़े सटीक ढंग से बतलाती है कि विज्ञापनों और विज्ञापन एजेंसियों के लिये आज मुख्य लक्ष्य बच्चे हैं। लगातार शिकायत करना, “नैग फैक्टर” में विशेषज्ञ बच्चे ही अंततः खरीदी और आर्थिक वृद्धि के चालक हैं। स्कूल अच्छे लक्ष्य हैं क्योंकि बच्चे ही बाज़ार की शब्दावली में “कैप्टिव आडिऐंस” (कैदी श्रोता) होते हैं। हाल ही में मैंने जयपुर के एक स्कूल में देखा जहाँ बच्चों को अडीडास ब्रांड का गणवेश पहनना पड़ता है।

अतः यह मात्र संयोग नहीं है कि सारे भारत में हम कार्पोरेट घरानों का शिक्षा प्रणाली पर निरंतर बढ़ते प्रभाव को देख सकते हैं, कार्पोरेट सोशल रिस्पॉसिबिलिटी (सीएसआर) के बहाने से। ये अजीम प्रेमजी फाउंडेशन, पीरामल फाउंडेशन, द टाटा फाउंडेशन, आईसीआईसीआई बैंक, हेवलेट पैकार्ड, नोकिया, कोकाकोला, मैकडोनाल्ड्स, माइक्रोसॉफ्ट तक व्याप्त है। इनके दर्शन का सार तत्व यही है कि ये सारे फाउंडेशन सरकार की 9% + वृद्धि से जुड़े हैं और शिक्षा प्रणाली का उपयोग वे अपनी जनता से संबंध (पीआर) रणनीति (अपने कार्पोरेट कुकृत्यों को ढंकने हेतु) के भाग के रूप में और अपने बाज़ार की अभिवृद्धि हेतु कर रहे हैं।

विश्व बैंक, जो भारतीय योजना आयोग को सर्वाधिक प्रभावित करता है, की विषय सूची-सभी के लिये शिक्षा और मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स, दरअसल नए लाभकारी ग्रामीण बाज़ारों (भूखे, शिक्षित, अंग्रेजी बोलने वाले हाइपर उपभोक्ताओं) के साथ के लिये है न कि गरीबी मिटाने के लिये। वे अभी भी हमें मूर्ख बनाने का प्रयत्न करते हैं कि ट्रिकल-डाउन अर्थ व्यवस्था वास्तव में चल सकती है। किंतु यथार्थ कुछ और ही बतलाता है: बीस वर्ष की मुक्त व्यापार अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप आज भारत के 100 सर्वाधिक धनी लोगों की अस्तियाँ देश के जीडीपी की एक चौथाई के बराबर हैं जबकि 80% से अधिक लोग 50 सेंट प्रतिदिन से भी कम पर गुजारा करते हैं। इस परिदृश्य में महान भारतीय मध्यवर्ग कमजोर धरातल पर खड़ा है। स्कूल पद्धति ऐसी स्थिति भी निर्मित करती है कि हम टिना – “देयर इज़ नो आल्टरनेटिव” पर विश्वास करें – जो आत्मघाती राजनैतिक-आर्थिक मॉडल है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय बड़े ही भद्दे तरीके से हमें विश्वास दिलाने का यत्न करता रहता है कि मनुष्य जन्म से ही ‘संसाधन’

है जो मशीन की खुराक है। भारत में अधिकार आधारित सामाजिक आंदोलनों की कमजोरी यह है कि वे सब अभी भी इस असीमित वृद्धि की शिक्षा-आर्थिक रूपावलि के अंदर ही हैं, मानव वस्तु है और अभियांत्रिकी स्वप्नवाद। हम जो 99% हैं को 'प्रगति' की अन्य संभाव्यताओं की कल्पना करने की इजाजत नहीं है – केवल इस अधिकार को पाने के लिये लड़ना।

एक तरीका जो शिक्षा प्रणाली द्वारा हमें मूर्ख बने रहने के लिये खास तौर पर आजमाया जाता है, वह है पारंपरिक समुदायों की विवेकयुक्त आवाजों को यह कह कर खामोश कर देना कि वे "अशिक्षित" थे। यदि इन तिरस्कृत स्वयं को सुना जाए, जैसे मेरी दादी के, तो अलग प्रकार की प्राथमिकताएं और संबंध, मानव के अस्तित्व और प्रेरणा का एक भिन्न अर्थ और भिन्न भारत की प्रेरणा का सृजन हो सकता है। वे "मानव संसाधन" भले न हों पर वे निर्विवाद रूप से विवेक, प्रेम तथा कल्पना के स्रोत हैं।

हमने उस मिथक का भी आंतरिकीकरण कर दिया है कि जिनकी अधिक स्कूलिंग हुई है वे अधिक 'शिक्षित' हैं बनिस्बत उनके जिनकी स्कूलिंग कम हुई हो। इस ज्ञान क्रमानुक्रम में, अधिक समय तक स्कूलों में रहे लोगों को, अपने कम समय तक स्कूलों में रहे देशवासियों को लूटने, दुर्व्यवहार करने, और भेदभाव करने का नैतिक अधिकार मिल गया है। यह अमानवीकरण करने वाला तर्क समूचे भारत में सुना जा सकता है, एनजीओ से लेकर, शासकीय अधिकारियों और कार्पोरेट नेताओं तक, कि किस प्रकार वे जन-जातीय लोगों और जनजातियों की भूमि तथा नगरीय बस्तियों को समझते हैं और उनके साथ कैसा व्यवहार करते हैं। यह गोरे लोगों के आखिरी बोझ तर्क का ही विस्तार जैसा प्रतीत होता है।

2. हमारे लिये स्कूली शिक्षा के गुप्त पाठ्यक्रम की ओर अधिक ध्यान देने की जरूरत है। पाठ्यक्रम की अंतर्निहित संरचना उसकी विषयवस्तु से अधिक तेज आवाज में बोलती है। जो नहीं कहा जाता है वह कहे गए से अधिक महत्व का है। उदाहरण के लिये, गुप्त पाठ्यक्रम हमें पढ़ाता है कि पाठ्य पुस्तकें और परीक्षाएं उत्तीर्ण करना शिक्षा का अंतिम स्रोत और पढ़ने का उद्देश्य है। हमें इस तरह तैयार किया जाता है कि हम विश्वास

करें कि स्कूल के बाहर बिताया गया हमारा प्रत्येक पल, खुद होकर अपने मित्रों व परिजनों के साथ सीखना तथा अनुभव करना, अनुपयोगी है “समय की पूर्ण बर्बादी है”, क्योंकि हमारी परीक्षा उस सबके लिये नहीं होगी और उसका प्रमाणपत्र नहीं मिलेगा। वे जो अपने हाथों का उपयोग करते हैं, और “शारीरिक श्रम” करते हैं को तुच्छ समझा जाता है और उनसे दूरी बनाई जाती है। अमेरिका में बच्चे नेचर डेफिसिट डिस्ऑर्डर (एनडीडी) से पीड़ित होने लगे हैं, और इतनी देर तक पढ़ने के कारण मोटे हो रहे हैं। हमें इस प्रकार से भी ढाला जाता है कि बाहरी ईनाम व सज़ा हमारे सीखने को संचालित करे, हमारी खुद की आंतरिक जिज्ञासा, प्रेरणा तथा स्थानीय संदर्भ नहीं।

मुझे याद आ रही है अपने छोटे दोस्त सुमित की और जो उसके साथ घटा। सुमित ने शिक्षान्तर के निकट के दीवाली गाँव से आना शुरू किया जब वह कक्षा 5 वीं में था। उसके पिता की एक छोटी सी ऑटो पाटर्स की दूकान थी। मेरा जितने बच्चों से साबका पड़ा है उनमें सुमित सर्वाधिक जिज्ञासु, मित्रवत एवं सक्रिय था। वह प्रतिदिन स्कूल के बाद 3 बजे आता था। वह कुछ पारंपरिक वैद्यों द्वारा आत्म-उपचार तथा जड़ी-बूटियों के पौधों के प्रति वह आकर्षित हुआ। उसने अपने घर की छत पर औषधीय पौधों का पूरा बगीचा बिना किसी की सहायता के अकेले ही बना डाला – मात्र 11 वर्ष का लड़का। उसकी नाटक, लेखन और जीव संचारण में भी रुचि थी। वह अपने पिता की दूकान में भी मदद करता था। मुझे याद है वह मुझसे शिक्षान्तर के विषय में प्रश्न किया करता था, और जहाँ कहीं भी उसे कुछ छूटता सा प्रतीत होता; हमारे मूल्यां व उपायों में कोई रिक्तता की अनुभूति होती, तो वह उनकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता था। जब वह कक्षा 7 वीं में पहुँचा, तो एकाएक सब कुछ रुक गया। सुमित दैनिक होमवर्क, साप्ताहिक टेस्ट, ट्यूशन क्लासों से दब कर रह गया, और कुछ वर्षों में मैंने देखा कि सुमित की तेजस्वितापूर्ण ऊर्जा धीरे-धीरे समाप्त हो गई। उसके पास वह सब करने के लिये, समय ही नहीं रहा जो उसे पसंद था। हाल में सुमित ने 12 वीं पास की है। वह अपने भविष्य को सोच कर भयभीत है। वह अपना आत्मविश्वास खो चुका है और खुद ही कुछ सीखने की योग्यता भी उसमें नहीं रही। वह अपने पिता के छोटे व्यापार से लज्जित है। यह केवल सुमित का ही मामला नहीं है बल्कि देश भर के लाखों बच्चों का है। आज जो

अपनी वास्तविक आकांक्षा को ढूँढ पाते और उन्हें विकसित कर पाते हैं, वे व्यवस्था के कारण नहीं अपितु व्यवस्था के बावजूद ऐसा कर पाते हैं।

3. स्व-संरचित शिक्षा ही असली चीज़ है। एकलव्य की प्राचीन कथा स्व-संरचित शिक्षा की ताकत का ज्वलंत उदाहरण है। वह बतलाती है कि हममें से प्रत्येक में वह क्षमता है कि हम बिना औपचारिक पढ़ाई और नियंत्रण के सीख सकते हैं और श्रेष्ठता प्राप्त कर सकते हैं। अन्य कई अर्वाचीन कहानियों की भाँति, यह हमें प्रकृति से जुड़ कर सीखने की प्रेरणा देती है। दुर्भाग्य से, आधुनिक स्कूल तथा एनजीओ ने एकलव्य को नायक से बेचारा में बदल दिया है। द्रोणाचार्य का *गुरु-दक्षिणा* के रूप में अंगूठा मांगना हमें बतलाता है कि केंद्रीकृत सत्ता अपनी शक्ति और वैधता को बचाए रखने के लिये किस हद तक जा सकती है।

आज भारत में प्रगतिवादी शिक्षाविद् शिशु-केंद्रित सीख की बात करता है। दुर्भाग्य से, शिशु-केंद्रित भाषाशास्त्र में भी बच्चे को वस्तु ही समझा जाता है जिसे चालाकी से एक सांचे में ढाल दिया जाए, बजाय इसके कि कोई एजेंसी हो जो उसे जगत में अपना अर्थ स्वयं तलाशने में सहायता करे। मेरे मित्र दयालचंद सोनी ने एक बड़ी सुंदर मेवाड़ी कहावत सुनाई थी *“वास्तविक लोकतंत्र अपने शासको को चुनने से नहीं आता, बल्कि वास्तविक लोकतंत्र अपने शिक्षकों को चुनने की योग्यता से आता है।”* अतः शिशु-केंद्रित शिक्षा के बजाय हम इस बात का पता लगाने का यत्न करें कि *शिशु-नेतृत्व सीख* के अधिक अवसर कैसे सृजित किये जा सकते हैं, जहाँ सभी उम्र के बच्चों को छोड़ दिया जाए और वे स्व-संरचित और स्व-संगठित होकर अपनी शिक्षा प्रक्रिया, नियम तथा स्थान बनाएं।

विगत दो वर्षों से मैं एक प्रयोग से संबद्ध रहा हूँ जिसका नाम है स्वराज विश्वविद्यालय (www.swarajuniversity.org) जिसमें प्रत्येक *खोजी (प्रशिक्षु)* को इस बात के लिये प्रोत्साहित किया जाता है कि अपने अनुपम और स्वयंकृत शिक्षा पाठ्यक्रम विकसित करे। हमने सीखा है कि स्व-संरचित शिक्षा के लिये दो तत्त्व अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। मेरी मान्यता है कि यदि भारत में एक बिलियन लोग हैं तो हमारे लिये एक बिलियन शिक्षा प्रणालियों के लिहाज से सोचने की आवश्यकता है। *1990 में शिक्षकों*

को दिये गए एक व्याख्यान में, गेट्टो ने कहा, “शिक्षित होने का कोई सही तरीका नहीं है, उतने तरीके हैं जितने उंगलियों के निशान होते हैं।” हमें खुद को चुनौती देनी चाहिये कि अपने प्रादर्श व प्रक्रियाएं (मानदंड/माडल) खुद विकसित करें जो विविधता के सहायक हों, बजाए उन्हें दबाने के।

दूसरा अहम तत्व है प्रमाणिकता। चूंकि हम मनुष्य हैं, इसलिये प्रमाणिकता से संचालित होते हैं, अर्थात्, ऐसे असली काम करने की इच्छा जो विश्व के, हमारे और अन्यो के लिये कोई मायने रखते हों। हमारी गरिमा की मूल भावना, हमारी उस योग्यता से जुड़ी हुई है कि हम सोदेश्य और अर्थपूर्ण ढंग से कार्य करें। स्वराज विश्वविद्यालय में, हम *खोजियों* को प्रोत्साहित करते रहे हैं कि वे वास्तविक परियोजनाओं पर उन प्रश्नों व मुद्दों को लेकर अपना समय खपाएं, जिनकी उन्हें चिंता हो। मैंने देखा है कि हम सबमें अपार ऊर्जा होती है जब हम प्रेरित हों। हमें किसी गोल्ड स्टार, धमकियों या दंड की आवश्यकता नहीं है। प्रमाणिकता हमें आशय युक्त, गहन अर्थ, आंतरिक प्रेरणा, आत्मानुशासन और असली फीडबैक देती है।

दो बातों का स्पष्टीकरण होना ज़रूरी है। प्रथम, स्व-संरचित शिक्षा का मतलब एकांत में सीखना या समाज-विरोधी होना नहीं है। वस्तुतः वह इसका ठीक विपरीत है। इसका आव्हान है गहन सह-शिक्षा और सह-सृजन, पूरे जीवन के साथ। द्वितीय, स्व-संरचित शिक्षा विनम्रता की भावना से चलित होती है जैसा की इस कथन में परिलक्षित होता है, “जितना अधिक मैं जान पाता हूँ, उतना अधिक लगता है कि मैं कितना कम जानता हूँ।”

4. आधुनिक संस्थात्मक शिक्षा का विकल्प स्वस्थ स्थानीय समुदाय है। स्व. संत-कार्यकर्ता विनोबा भावे ने एक बार कहा था कि *तानाशाही* का विकल्प *नाताशाही* (साद्रश्यता समूह और सामुदायिक संबंध) है। गेट्टो हमें प्रेरित करते हैं कि हम अपनी ऊर्जा और प्रयासों का उपयोग स्वस्थ संयुक्त परिवारों, सुरक्षित स्थान आधारित एवं टिकाऊ शिक्षा के पुनर्निर्माण में करें। इस प्रकार की सोच प्रसिद्ध अफ्रीकी कहावत का अनुसरण करती है “कि एक बच्चे को बड़ा करने के लिये पूरे गाँव की ज़रूरत पड़ती है।” भारत के शहरीकरण में, समुदाय की पारंपरिक धारणा तेजी से विघटित हो रही है।

गेट्टो हम सब से सवाल करते हैं कि हम इस बेचैन करने वाले प्रश्न पर गंभीरता से विचार करें, “मेरा समुदाय क्या है?”

पिछले अनेक वर्षों से मेरा उदयपुर में बतौर लर्निंग सिटी प्रक्रिया का कार्य था, नगरीय क्षेत्र में समुदाय और सामान्य संसाधनों का पुनरोत्थान था। हमने सीखा कि हमारी स्थानीय भाषा, भूमि, शारीरिक श्रम और मैत्रीपूर्ण संबंध वास्तविक समुदाय के पुनर्निर्माण हेतु महत्वपूर्ण होते हैं। स्थान की अनुभूति (सायबर स्पेस से भी आगे) आवश्यक है और प्रायः महत्वपूर्ण सीखने वाले सवाल उपस्थित करती है कि हम अपने भोजन, ऊर्जा, जल, पशु, कचरा, यहाँ तक कि मल से अपने संबंधों को किस तरह देखते हैं?

उपहार संस्कृति एक और शक्तिशाली विचार है जिसकी खोज हम समुदाय के संदर्भ में करते रहे हैं। पारंपरिक समुदायों में, सबसे धनी लोग वे नहीं होते जो सबसे अधिक संचय करते हैं, बल्कि वे जो सबसे अधिक बांटते हैं। हमारे पास बहुत खूबसूरत उपहार हैं, जो बाहर आने की प्रतीक्षा में हैं ताकि उन्हें हम एक दूसरे के साथ बांटे। अनेक प्रक्रियाओं और रस्मों को आरंभ करने की आवश्यकता है जिससे कि विश्वास, पारस्परिक सहायता, करुणा, सहभागिता और किसी से जुड़ाव को पुनर्जीवित किया जा सके।

स्वस्थ समुदाय में हमारे बच्चों (और बतौर वयस्क हमें) की गुरुओं की एक पूरी जमात तक पहुँच होगी या वे प्रेरणा के स्रोत होंगे जिनमें कृषक, कलाकार, उपचारक, दादी-नानी, उद्यमी, कार्यकर्ता, पशु आदि सभी सम्मिलित होंगे – केवल स्कूल शिक्षक नहीं। इसका अर्थ है कि ‘समाजीकरण’ के अनुभव कहीं ज्यादा शानदार होंगे, उसकी तुलना में जो स्कूल में होता है। वर्तमान में शिक्षक की संकीर्ण परिभाषा के कारण, स्कूलों ने “अच्छे” शिक्षकों की कृत्रिम कमी उत्पन्न कर दी है। समुदाय में रहने से हमारी सोच बदलती है जहाँ सीखने के साधन बहुतायत से सभी के लिये उपलब्ध हैं।

हमने शहर के इर्द-गिर्द जगहें बनाने का प्रयत्न किया है जो विविध पीढ़ियों के बीच और विविध समुदायों के बीच संवाद तथा रचनात्मक गतिविधियों के संवर्धन के काम आती हैं। बुद्धि का पोषण तभी हो सकता है जब विविध आयु वर्ग के लोग गतिशीलता

के साथ आपस में व्यवहार करें, संकुचित एक ही आयु के समूहों से ऊपर उठ कर। ऐसे स्थलों में आहिस्ता से प्रश्न करना संभव होता है और कार्य, मनोरंजन, शिक्षा, परिवार, व्यायाम आदि का कठोर टुकड़ों में विभाजन से पार पाना मुमकिन होता है जो आधुनिक औद्योगिक शहरी जीवन के लक्षण हैं।

भारत में संयुक्त परिवारों और पारंपरिक समुदायों को नष्ट करने का सक्रिय अभियान चलाया गया है। कई कार्यकर्ता इसे कठोर पितृसत्ता, धार्मिक कट्टरता और जाति दमन के साधन के रूप में देखते हैं। उनका भय कभी-कभी सच साबित भी होता है। किंतु बजाय शिशु को नहाने के पानी से बाहर फेंकने के, मैं कहूँगा कि हम इन सामाजिक बुराइयों से टक्कर लें – गहन संवाद, प्रमाणिकता से और खुले हृदय से सुनकर और सहयोग की भावना के साथ। केंद्रीकृत संस्थाओं द्वारा (जिनमें हृदय नहीं होता) समुदायों को दबाने से और अधिक हिंसा का मार्ग प्रशस्त होगा।

* * *

निष्कर्ष में, गेट्टो चुनौती देते हुए पूछते हैं कि उस ईशनिंदापूर्ण विचार के बारे में हम चिंतन करें कि जीवन में अधिक नहीं, कम स्कूलिंग होनी चाहिये। वे चाहते हैं कि हम उस कृत्रिम द्विभाजीकरण को तोड़ दें जो शिक्षा और जीवन के बीच रचा गया है। वे आवाहन करते हैं कि हम उस क्षति का ईमानदारी से आकलन करें जो स्कूलिंग ने हमारी स्थानीय सांस्कृतिक पद्धति को, हमारी स्थानीय परिवेशीय पद्धति को, हमारी स्थानीय अर्थ व्यवस्था को और बतौर आध्यात्मिक जीव हम सब को पहुँचाई है। भारत में ऐसी बहस का समय आ गया है।

सत्याग्रह की भावना के साथ, गेट्टो ने हाल ही में बार्टेलबी परियोजना आरंभ की है, शिक्षा प्रणाली से असहयोग करने का आंदोलन। वे सरकारी विराट मानकीकृत परीक्षा की पकड़ को तोड़ना चाहते हैं जिसने अभिभावकों, शिक्षकों और छात्रों को जकड़ रखा है। ऐसे तनाव उत्पन्न करने वाले टेस्ट सीखने की वास्तविक प्रक्रिया का अपहरण कर लेते हैं और शिक्षा तथा जीवन के बीच के अंतर को बढ़ाते हैं। वे जानते हैं कि जो सत्ता पर काबिज हैं, वे परीक्षा को समाप्त करने में सहायता नहीं करेंगे। अस्तु गेट्टो छात्रों को प्रोत्साहित कर रहे हैं कि वे शांतिपूर्वक मानकीकृत टेस्ट्स में भाग लेने से इनकार कर दें

और उन्हें जो मानकीकृत टेस्ट्स दिये जाएं उनमें केवल ये शब्द लिख दें, “मैं आपका टेस्ट न लेना पसन्द करूँगा”।

भारत में शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीई), असली सीखने या स्वतंत्रता के बारे में नहीं है। बल्कि अनिवार्यता और मानकीकरण पर आग्रह के कारण यह वस्तुतः मानसिक दासता की संस्थाओं को और गहरा करने एवं कारखाना स्कूल व्यवस्था को सुदृढ़ करने वाला है। शिक्षा का अधिकार कानून, शिक्षा में अत्यावश्यक नवीन विचारों की हत्या कर देगा। बार्टेलबी परियोजना से प्रेरणा लेकर, हमें भी इस अधिनियम का विरोध करने के अहिंसक और रचनात्मक उपायों की खोज करनी चाहिये ताकि इसे पलटा जा सके। हम अनेक निकल भागने की प्रक्रियाएं रच सकते हैं जो हमें वास्तविक, विभिन्न प्रकार की शिक्षा, ज्ञान व विवेक को मूल्य देने की ओर अग्रसर करे जो कि क्लासरूम के बाहर मौजूद हैं। यह भी आवश्यक है कि हम उन लोगों के प्रति तरह-तरह से भेदभाव करने की रीतियों को चुनौती दें, जिनके पास उपलब्धियाँ (डिग्रियाँ) नहीं हैं, और नौकरियों की चयन प्रक्रिया से उपाधियों की अनिवार्यता को हटाएं। यदि हम ऐसा ईमानदारी से करें तो हम शीघ्र ही महसूस कर सकते हैं जो अनेक संस्कृतियाँ बहुत पहले से जानती हैं – कि दरअसल हम कक्षा-कक्ष के बाहर जितना सीखते हैं उतना क्लासरूम के अंदर बैठ कर नहीं सीखते। मुझे बड़ा सुखद आश्चर्य तब हुआ जब मैंने केरल के आठवीं कक्षा के छात्रों के एक समूह से पूछा कि क्या वे स्कूल के बगैर और संस्थात्मक नियंत्रण के बिना सीख सकते हैं, तो उन्होंने एक मत होकर उच्च स्वर में कहा “हाँ”, शुक्र है स्व-संरचित सीखने की ललक अभी भी उनमें है।

एक अन्य बात जो मुझमें आशा का संचार करती है वह है बढ़ती हुई होमस्कूलिंग (घरू शिक्षा) या अनस्कूलिंग (स्कूल में प्रवेश नहीं लेना) आंदोलन जो पूरे भारत में चल रहा है। दस वर्ष पूर्व जब मेरी पत्नी विधि और मैंने अपनी पुत्री को अन-स्कूल करने (और बतौर अभिभावक हम दोनों को अन-स्कूल करने) का निर्णय लिया तब बहुत कम परिवार ऐसे थे जिन्होंने मेरे विचार का समर्थन किया। आज यह आंदोलन तेजी से बढ़ रहा है और काफी विविधता एवं प्रक्रियाओं से युक्त है। कुछ लोक तर्क करते हैं कि हम गैर जिम्मेदार हो रहे हैं ओर हमें सार्वजनिक स्कूलों को फिक्स करना चाहिये ताकि सभी

बच्चों को लाभ मिल सके। किंतु मैं सोचता हूँ कि इस नए आंदोलन के द्वारा अनेक गहन और दूरगामी प्रश्न मानव शिक्षा पर उठाए जा रहे हैं। कई सामान्य सांस्कृतिक संसाधन, प्रशिक्षण अवसर तथा सार्वजनिक स्थान (जो सभी बच्चों के लिये उपलब्ध हैं) रचे और बचाए जा रहे हैं। इस आंदोलन के केंद्र में अपने बच्चों के समय को पुनः प्राप्त करने का प्रयास और बच्चों के साथ हमारा समय है। मुझे एक चुटकुला याद आ रहा है जो पूछता है, “उस व्यक्ति की क्या परिभाषा है जो धनवान है? उत्तर है वह जिसके पास धन है। उस व्यक्ति की क्या परिभाषा है जो *सचमुच* में धनवान है? उत्तर है वह जिसके पास समय है। उस व्यक्ति की क्या परिभाषा है जो *सचमुच*, *सचमुच* में धनवान है? उत्तर है वह जिसके पास बच्चों के संग बिताने का समय है।” यह आंदोलन, विराट भय की उस संस्कृति को सीधी चुनौती देता है जो हमें इस विश्वास से लकवाग्रस्त कर दे रहा है कि हम उस चूहा दौड़ में पिछड़ जाएंगे यदि हमारे बच्चे कारखाना शिक्षा में प्रतिस्पर्धा नहीं करेंगे।

मेरी हार्दिक बधाइयाँ और शुभकामनाएं बनियन ट्री को जो इस अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तक को भारतीय शैक्षणिक परिदृश्य पर ला रहे हैं। मैं आशा करता हूँ कि जो भी इसे पढ़ेंगे वे अपने मासूम बच्चों को कारखाना स्कूलों में जाने के लिये उन पर दबाव डालने, घूस देने या ज़बर्दस्ती करने से पहले *दो दफा* (बल्कि *तीन दफा*) सोचेंगे।

शिक्षान्तर आंदोलन,

उदयपुर, राजस्थान

ई-मेल : manish@swaraj.org